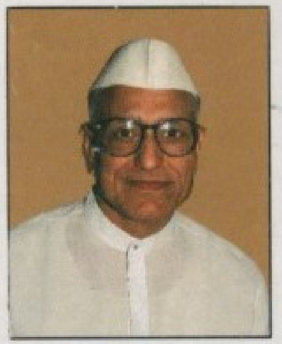

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का नाम आज जैन समाज के उच्च कोटि के विद्वानों में अग्रणीय है।

ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी वि.सं. १९९२ तदनुसार शनिवार, दिनांक २५ मई, १९३५ ई. को ललितपुर (उ.प्र.) जिले के बरौदास्वामी ग्राम के एक धार्मिक जैन परिवार में जन्मे डॉ. भारिल्ल शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न तथा एम.ए. पीएच.डी. हैं। समाज द्वारा विद्यावाचस्पति, वाणीविभूषण, जैनरत्न आदि अनेक उपाधियों से समय-समय पर आपको विभूषित किया गया है।

सरल, सुबोध, तर्कसंगत एवं आकर्षक शैली के प्रवचनकार डॉ. भारिल्ल आज सर्वाधिक लोकप्रिय आध्यात्मिक प्रवक्ता हैं। उन्हें सुनने देश-विदेश में हजारों श्रोता निरन्तर उत्सुक रहते हैं। आध्यात्मिक जगत में ऐसा कोई घर न होगा, जहाँ प्रतिदिन आपके प्रवचनों के कैसिट न सुने जाते हों तथा आपका साहित्य उपलब्ध न हो। धर्मप्रचारार्थ आप अनेक बार विदेश यात्रायें भी कर चुके हैं।

जैन-जगत में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले डॉ. भारिल्ल ने अब तक छोटी-बड़ी ४४ पुस्तकें लिखी हैं और अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया है, जिनकी सूची अन्दर प्रकाशित की गई है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अब तक आठ-भाषाओं में प्रकाशित आपकी कृतियाँ ३७ लाख से भी अधिक की संख्या में जन-जन तक पहुँच चुकी हैं।

सर्वाधिक बिक्री वाले जैन आध्यात्मिक मासिक वीतराग-विज्ञान हिन्दी तथा मराठी के आप सम्पादक हैं। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की समस्त गतिविधियों के संचालन में आपका महत्वपूर्ण योगदान है।

गोली का जवाब गाली से भी नहीं

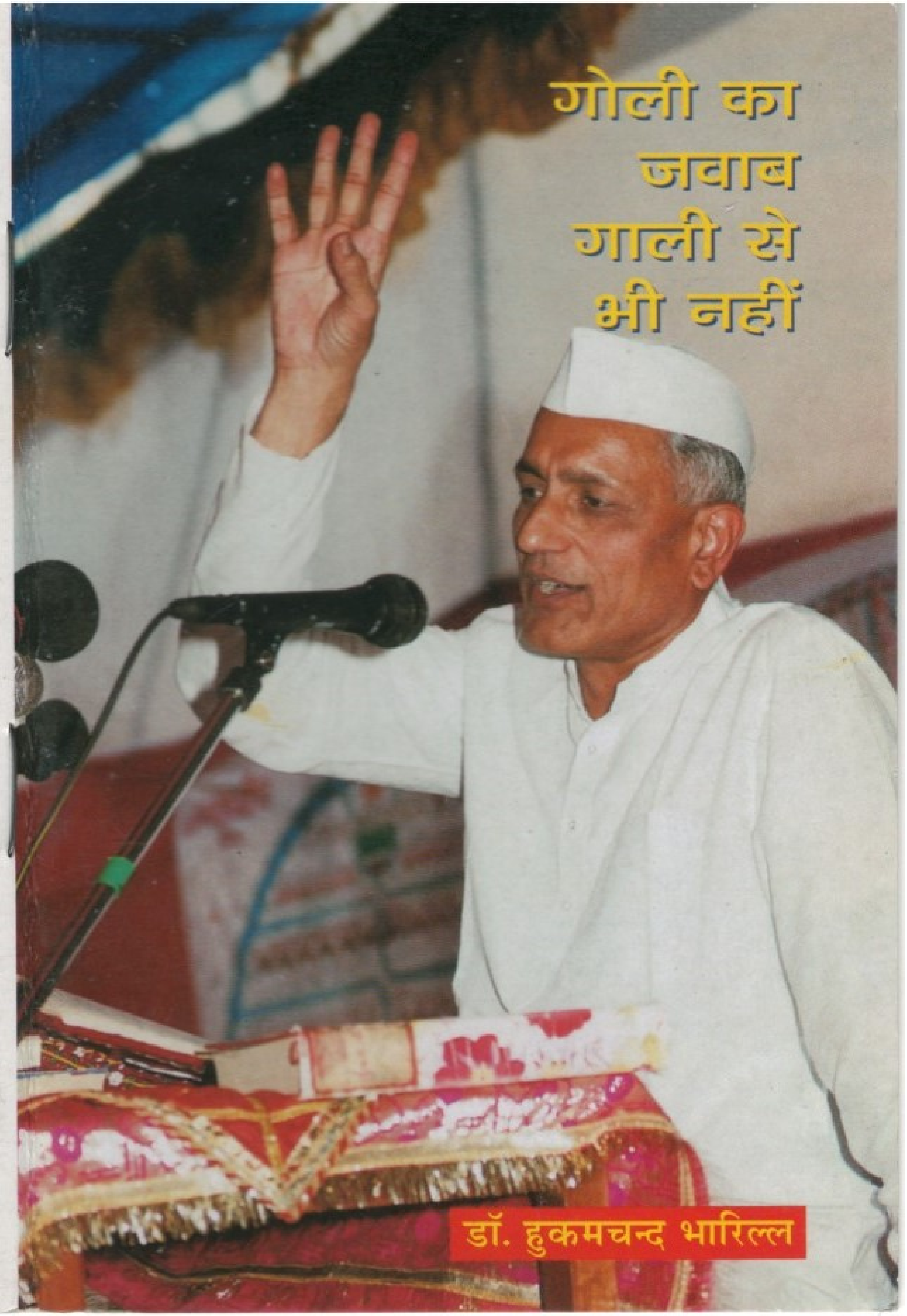

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

डॉ. भारिल्ल द्वारा प्रतिपादित एकता के पाँच सूत्र

१. भूतकाल को भूल जाओ।

२. भविष्य के लिए कोई शर्त मत रखो।

३. वर्तमान में जो जहाँ है, वही रहकर अपना कार्य करें।

४. जिन पाँच प्रतिशत बातों के संबंध में असहमति है, उन्हें अचर्चित रहने दें और आलोचना-प्रत्यालोचना से दूर रहें।

५. जिन बातों में पूर्ण सहमति है, उनका मिल-जुलकर या अलग-अलग रहकर, जैसे सम्भव हो, डटकर प्रचार-प्रसार करें।

गोली का जवाब गाली से भी नहीं

प्रवचनकार :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.

संपादक :

ब्र. यशपाल जैन, एम.ए.

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन : (0141) 2707458, 2705581

हिन्दी :
प्रथम पाँच संस्करण : 43 हजार
(25 मई, 1999 से अद्यतन)
छठवाँ संस्करण : 3 हजार
(28 मई, 2009)
श्रुतपंचमी
गुजराती :
प्रथम संस्करण : 5 हजार
(15 अगस्त, 2000)
मराठी :
प्रथम दो संस्करण : 3 हजार
(6 अक्टूबर, 2001)
कुल योग : 54 हजार

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

1.	श्री शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	251
2.	शाह रजनीकान्त कोदारलालजी जैन, सिकन्दराबाद	201
3.	श्री राजकुमारजी जैन, सिकन्दराबाद	201
4.	गाँधी अमृतलाल वीरचन्दजी जैन, हैदराबाद	201
5.	श्रीमती कल्पना नरेन्द्रकुमारजी जैन, जयपुर	200
6.	श्रीमती पानादेवी मोहनलालजी सेठी, गोहाटी	101
	कुल योग	1155

मूल्य : दो रुपए

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड,
बाईस गोदाम, जयपुर

प्रकाशकीय
(षष्टम् संस्करण)

प्रस्तुत कृति का यह नवीन संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

प्रस्तुत कृति डॉ. भारिल्ल के उन व्याख्यानों का आलेख है, जो कि उन्होंने नागपुर में उस अवसर पर दिये थे, जबकि वहाँ परवार दिगम्बर जैन मन्दिर से सोनगढ और जयपुर से प्रकाशित समयसारादि शास्त्रों को अपमानपूर्वक निकालकर, उसे हाथ ठेले में रखकर गांधी-बाग में लगे जैन युवा फैडरेशन के पंडाल में भेज दिया गया था।

उक्त दुष्कृत्य ने समाज को तो उत्तेजित किया ही, किन्तु उक्त घटना के कारण स्थानीय और सारे देश से समागत युवा फैडरेशन के 2 हजार से भी अधिक युवकों में भी उत्तेजना फैल गई थी।

ऐसे अवसर पर यदि स्थिति को नहीं सम्भाला जाता तो कुछ भी हो सकता था।

समाज के सद्भाग्य से डॉ. भारिल्ल वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने अपने प्रभावी व्याख्यान से सभी को शान्त किया और ऐसा वातावरण बनाया कि सम्पूर्ण उत्तेजना रचनात्मक दिशा में मुड़ गई और एक भयानक काण्ड होते-होते बच गया। अब वहाँ एक बड़ा भव्य मंदिर बन गया है, जो तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है।

इस कृति का मूल्य कम करने में जिन महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनकी सूची अन्यत्र प्रकाशित है। सभी दातारों का हम हृदय से आभार मानते हैं।

सदैव की भाँति प्रकाशन व्यवस्था अखिल बंसल ने सम्हाली है, एतदर्थ हम उनके भी आभारी हैं। **– ब्र. यशपाल जैन, एम.ए.**

प्रकाशन मंत्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

सम्पादकीय

नागपुर में जब जिनवाणी माता पर आपत्ति का प्रसंग आया था, तब मैं नागपुर में नहीं था; तथापि टेप एवं प्रत्यक्षदर्शियों से सब समाचार सुना था। उस दिन से मन में यह भावना थी कि ये टेप सब साधर्मी सुनें तथा डॉ. भारिल्ल के मनोमन्दिर में प्रवेश कर उनके हृदय को सब जानें। लेकिन जब मेरी भावना या अनेकों की भावना मन में ही रह गयी। वैसे जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर के मालिक, सरल एवं मृदुस्वभावी श्री सोहनलालजी जैन ने अनेक लोगों को टेप सुनवाये ही हैं; तथापि सभी लोगों की जानकारी हेतु इन्हें हम प्रकाशित कर रहे हैं।

पण्डित श्री राकेश जैन, जैनदर्शनाचार्य, नागपुर ने इस विषय के कैसेटों को ढूंढ़कर निकालना एवं कैसेट से प्रवचन उतरवाने के काम में विशेष कष्ट उठाए हैं, अतः मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

डॉ. भारिल्ल के लेखों का संग्रह बिखरे मोती के संपादन के निमित्त से नागपुर की घटना और ताजी हो गयी, जिसके फलस्वरूप यह पुस्तिका आपके हाथ में देने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

बिखरे मोती पुस्तक के सामाजिक विभाग में डॉ. भारिल्ल की रीति-नीति विशेष स्पष्ट हुई है, उसे पढ़कर पाठक अपनी जिज्ञासा शांत करें और जिन्हें नागपुर की घटना के टेप सुनना हो तो वे जयपुर संस्था के टेप विभाग से सम्पर्क कर सकते हैं।

– ब्र. यशपाल जैन

ॐ

गोली का जवाब गाली से भी नहीं

(नागपुर में जिनवाणी के अपमान होने पर उत्तेजित मुमुक्षु समाज के समक्ष २८ एवं २९ दिसम्बर १९८७ को दिये गये डॉक्टर भारिल्ल के ये व्याख्यान उनकी भावना, रीति-नीति और सामाजिक संदर्भ में उनके विचारों को व्यक्त करते हैं। इनके कैसेट भी उपलब्ध हैं। — **सम्पादक**)

प्रथम दिन

यदि आपने जीवनभर समयसार का स्वाध्याय किया है तो समझ लीजिये कि आज उसकी परीक्षा की घड़ी आ गई है। यदि आप लोगों का थोड़ा-बहुत भी विश्वास हम पर है तो आप यह सोचिए कि हम कोई चुप नहीं बैठे हैं, शान्त नहीं बैठे हैं। जितनी पीड़ा आपके हृदय में है, उससे कहीं ज्यादा पीड़ा हमारे हृदय में भी है। आप तो इसको (जिनवाणी को) पढ़ते ही हैं, परन्तु हम तो इसे पढ़ते भी हैं, पढ़ाते भी हैं और छपाते भी हैं; एक-एक अक्षर का

प्रूफ-रीडिंग भी करते हैं। हमारा तो सारा जीवन इसी से जुड़ा हुआ है। **विवेक के खो देने से तो कोई काम दुनिया में सफल नहीं होता है। जब भी कोई ऐसा प्रसंग हमारे सामने उपस्थित हो तो हमें ऐसे प्रसंगों में हमारे पूर्वजों ने जैसा आचरण किया था, वैसा ही आचरण हमको भी करना चाहिए।**

सुबह तक की स्थिति में और अभी की स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। उत्तेजना का वातावरण सुबह तक दूसरे पक्ष में था; यह घटना घट जाने से अब हमारे प्रत्येक मुमुक्षु भाई का हृदय आंदोलित हो गया है; इसलिए हमें अब शांति की जितनी आवश्यकता है; उतनी आवश्यकता शायद इसके पहले नहीं थी। हम शांत चित्त से कम से कम यह सोच तो सके कि ऐसी घटनाओं का सामना करने के लिए हमें कौन-सा मार्ग चुनना चाहिए; जो हमारी भगवान महावीर की परंपरा के अनुकूल हो, हमारी कुन्दकुन्द की दिगम्बर परम्परा के अनुकूल हो। कल हम इस जिनवाणी को यहाँ से कैसे ले जायेंगे, कहाँ ले जायेंगे; इसके बारे में अभी जल्दी कुछ भी घोषणा करने की आवश्यकता नहीं है। हम लोग शान्त चित्त से एकबार विचार करेंगे और जब

किसी निर्णय पर पहुँचेंगे, तब बतायेंगे कि अपने को क्या करना है।

जब आपके हृदय में इतनी गहरी वेदना है, इतना गहरा भाव है, उत्तेजना है तो एक बार एक समय का भोजन छोड़कर णमोकार मंत्र का पाठ करके पहले अपने चित्त को शान्त कीजिए। अशान्त चित्त में लिया गया कोई भी निर्णय आत्मा के हित के लिए तो होता ही नहीं है, समाज के लिए भी उपयोगी नहीं होता है। समाज टूटे नहीं और हमारी आत्मा की साधना, धर्म की साधना, जिनवाणी की आराधना शान्तिपूर्वक चलती रहे — ऐसा कोई मार्ग सोचेंगे।

अभी अपनी बुद्धि वाँझ नहीं हुई है कि हम किसी समस्या का समाधान न निकाल सके। इसलिए मेरा आप सबसे अनुरोध है कि अब हम क्या करेंगे और क्या नहीं करेंगे, इसके बारे में कोई घोषणा न करें। पहले तो कम से कम २४ घंटे तक अपने चित्त को शांत करें और फिर शान्तचित्त से निर्णय करें।

(श्रोताओं से आवाज - जिनवाणी माता की जय कुन्दकुन्दाचार्य की जय — ३ बार)।

अपने लोगों से ही प्रताड़ित होकर यह जिनवाणी माता यहाँ आ गई है; तो अब यह यहाँ ऐसे ही नहीं जावेगी। जिसके हजारों बेटे-बेटियाँ यहाँ बैठे हों, वह अब ऐसे ही कैसे जा सकती है? अब तो यह गाजे-बाजे के साथ जावेगी, जिनेन्द्र रथयात्रा के समान इसकी यात्रा निकाली जावेगी। और जहाँ भी विराजमान होगी, जिनेन्द्र भगवान के समान ही पूजी जावेगी। (तालियाँ)

जब यह हमारे हृदयों में इतनी गहरी विराजमान है तो दुनिया की कौन-सी ताकत है कि जो इसे हमारे हृदयों में से निकाल सके? आप तो जानते ही हैं कि दर्पण का एक स्वभाव होता है, उसके सामने जो चीज आती है, वह उसमें झलकती है और ज्यों-ज्यों वह चीज उससे दूर की जाती है, दर्पण के हृदय में वह उतनी ही गहराई में प्रवेश करती चली जाती है। दर्पण से वस्तु को जितनी दूर आप करेंगे, उतनी ही वह अन्दर गहराई में प्रवेश करेगी। मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आप जिनवाणी के प्रति इतने भावुक पहले कभी हुये थे?

जब हमारी रथयात्रा निकलती है तो हम चार अनुयोगों के शास्त्रों की चार बोलियाँ लगाते है, पर आज हम हजार

बोलियाँ लगायेंगे। एक-एक आदमी बोली लगाकर एक-एक शास्त्र यहाँ से लेकर रथयात्रा में चलेगा। इसप्रकार हम न केवल जिनवाणी माँ के अपमान का प्रायश्चित करेंगे, अपितु उसके यथा-सम्भव सम्मान से विराजमान करने की व्यवस्था भी कर लेंगे।

अब हम सब की ऐसी भावना हो रही है कि एक जिनवाणी मुझे भी मिलनी चाहिए, इस बोली को मैं ही लूँगा। अरे, भाई! इतने लोग चाहे तो पाँच-दस लाख रुपया तो बातों-बातों में खड़े कर सकते हैं। एक नया मंदिर, नया स्वाध्याय मंदिर यहाँ खड़ा कर सकते हैं। इसमें कौन से आश्चर्य की बात है ? हमारा यह जो जिनवाणी के अपमान का दुख है, वह कोरे शब्दों में ही नहीं रहे, उसके लिए हम कुछ त्याग भी करें, कुछ समर्पण भी करें और यह सब कर सकते हैं हम।

लेकिन हम यह नहीं चाहते; क्योंकि इससे समाज के दो टुकड़े हो जायेंगे। हम इस जिनवाणी को लेकर जहाँ विराजमान करेंगे, जहाँ कोई नई जगह बनायेंगे तो भविष्य में जो भी दान करने की भावना होगी, उसी जगह को देंगे, लेकिन हमारा जो मूल मंदिर है, जिसमें हमने अपनी जान

की बाजी लगाई है, हमारे पूर्वजों का भी पैसा लगा है, दान का स्त्रोत फिर उधर नहीं रहेगा।

इसलिए हम नहीं चाहते हैं कि किसी भी तरह अभी यह काम हो, अभी इसके लिए हम आवश्यकता भी महसूस नहीं करते हैं; क्योंकि आज रात को पंचायत की मीटिंग होनेवाली थी और जिसमें यह निर्णय होने वाला था। वह पंचायत की मीटिंग हो ही नहीं पाई और उसके पहले ही यह काम हो गया। जिस काम के लिए पंचायत की मीटिंग होने वाली थी, वह काम पहले ही हो गया। इसीलिए यह काम पंचायत ने किया है, ऐसा हम नहीं मान सकते, इसलिए हमारे पास अभी एक पंचायत की अदालत है।

यदि पंचायत हमें अपने साथ रखना चाहती है, समाज के दो हिस्से नहीं करना चाहती है तो हम भी उसके लिए पूरी तरह समर्पित है। हम, आप सब लोगों से निवेदन करते हैं कि यदि पंचायत प्रेम से आपको अपने साथ रखती है तो आप सिर झुकाकर उस पंचायत के साथ ही रहिये। हम नहीं चाहते हैं कि इस शिविर के साथ कोई ऐसा इतिहास जुड़े कि इस प्रसंग पर नागपुर में एक अखण्ड समाज के दो टुकड़े हो गये थे।

आपकी इतनी भावना देखकर हमें विश्वास हो गया है कि एक साल के भीतर ऐसा स्वाध्याय मंदिर या मंदिर बन सकता है कि जहाँ यह जिनवाणी पूरे सम्मान के साथ सुरक्षित रह सकती है; लेकिन उसमें समाज के दो हिस्से हो जायेंगे और यह कलंक हम अपने माथे पर किसी भी हालत में नहीं लेना चाहते हैं। अत्यन्त मजबूरी की हालत में ही हम इस दिशा में सोचेंगे; इसलिए मैं आप से कहता हूँ कि ऐसी कोई जल्दबाजी नहीं करें।

अभी अपने पास दो-तीन दिन सोचने-समझने के लिए हैं। **समाज का स्नेह हम उनसे हाथ जोड़कर प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। हमें उनका स्नेह मिलेगा तो हम पूरे संकल्प के साथ उनके साथ रहेंगे और नहीं मिलेगा तो भी जिनवाणी की आराधना तो हम कभी छोड़ेंगे नहीं, वह तो हर हालत में हमारे खून का एक अंग बन चुकी है। इसलिए इसके स्वाध्याय का इंतज़ाम तो हम करेंगे ही।** अभी हमारे पास अनेक रास्ते खुले हुए हैं, इसलिए हम कोई एक रास्ते की घोषणा न करें, उत्तेजना में न आयें। अपनी भावना को कायम रखें और उत्तेजना को समाप्त कर दें, मेरा आपसे यह विनम्र अनुरोध है।

हमारी नागपुर की समाज, समझदार समाज है, बुद्धिमान समाज है, पढ़े-लिखे लोग हैं। जो गलतफहमियाँ हमारे बारे में समाज को हैं, हम इन दो-तीन दिनों में अपनी वाणी से, अपने व्यवहार से दूर करने का प्रयत्न करेंगे, जिससे कि समाज के टूटने का जो प्रसंग बना है, वह किसी तरह टल जाये। यह उपसर्ग अब जिनवाणी का नहीं रहा, समाज का हो गया है, इसलिए हमें उस दिशा में सोचना चाहिए।

जिनवाणी तो हमारी गोद में, हमारे माथे पर आ ही गयी है। इसे तो हम अपने माथे से उतारने वाले हैं ही नहीं, लेकिन हमारी समाज की भी एक समस्या है। महाराज श्री कोई आदेश दें और समाज उसको न मानें — यह कैसे सम्भव है? **वीतरागी नग्न दिगम्बर साधु भी हमारे सिरमोर हैं** और उनकी उपेक्षा नागपुर समाज तो क्या कोई भी समाज कैसे कर सकती है? इसलिए इस समाज की यह एक मजबूरी भी हो सकती है, यह बात हमको गहराई से अनुभव करना चाहिए कि इस दिशा में हम क्या कर सकते हैं ?

मेरे पास एक भाई श्री शिखरचन्दजी का एक पत्र आया है और उन्होंने मुझे यह पढ़कर भी सुनाया है। उन्होंने मुझसे

अनुरोध किया है कि आज आप उसे सभा में पढ़कर सुना दीजिए और इसके बारे में समाधान कर दीजिए। समाज को गलतफहमी है, वह कुछ दूर हो सकें, इसलिए पहले मैं उनका पत्र पढ़कर सुनाता हूँ और फिर मैं अपनी तरफ से उस गलतफहमी को दूर करने का प्रयास करूँगा।

हम आपसे हाथ-जोड़कर प्रार्थना करते है कि एक दिन का, दो दिन का समय हमको दीजिए, जिससे इस माहौल में जो दोनों तरफ उत्तेजना बढ़ गई है, उसे हम अपने प्रयत्नों से शान्त कर सकें। यदि हम सफल न हुए तो अपना रास्ता चुनने के लिए हर एक को अवसर मौजूद ही है। जिदंगी में ऐसे मौके बहुत कम आते हैं। पत्र में लिखा है —

पहला प्रश्न : सोनगढ़ और उनके साहित्य से अभी आपका क्या संबंध है? ऐसा पता चला है कि आपने यह प्रकाशित किया है कि उनसे अब आपका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहा तो आप अभी इस शिविर में भी यह घोषणा करें, ताकि समाधान हो सकें।

भाई! मैं आपको बताना चाहता हूँ, पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के स्वर्गवास के बाद कुछ ऐसे लोगों के हाथ में सोनगढ़ की व्यवस्था चली गयी कि जिनको न तो

समाज की स्थिति की पूरी जानकारी है और न वे धार्मिक क्रियाओं के बारे में ही पूरी तरह वाकिफ हैं। हमारे बहुत प्रयत्न करने के बाद भी वे लोग नहीं मानें और उन्होंने यह भावी तीर्थंकर की मूर्ति विराजमान कर दी। इस कारण हमारे लोगों ने इस्तीफा दे दिया। 12 में से 8 ट्रस्टी हमारे थे और उन सब 8 ट्रस्टियों ने इस्तीफा दे दिया। उसके बाद जो भी काम सोनगढ़ से हुऐ हैं, उन कामों से न हमारा कोई संबंध है, न सहयोग है, न हमारी अनुमोदना है।

रही बात हमारे आध्यात्मिक गुरु श्री कानजी स्वामी की। उन्होंने हमें जो अध्यात्म की शिक्षा दी है, उन्होंने जो वीतरागी तत्त्वज्ञान हमें दिया है; उसके लिए हम उनके ऋणी हैं और उन्हें हम अध्यात्म-विद्या के गुरु मानते हैं, 'देव-शास्त्र-गुरु' वाले गुरु नहीं।

यह ध्यान रखिए मैंने स्वयं श्री कानजी स्वामी से इन्टरव्यू लिया था, उस वक्त मैं आत्मधर्म का सम्पादक था, उसमें वह छापा भी था। उसमें यह बात उनसे पूछी थी कि आपको लोग 'गुरुदेव' क्यों कहते हैं? तो उन्होंने कहा था कि मैं 'देव-शास्त्र-गुरु' वाला गुरु नहीं हूँ। लोग मेरे से अध्यात्म सुनते हैं, इसलिए जैसे-रविन्द्रनाथ ठाकुर को

गुरुदेव कहते हैं और गोपालदासजी बरैय्या को गुरुजी कहते थे- ऐसे ही लोग मुझे कहते हैं। मैं तो देव-शास्त्र-गुरु वाले गुरुओं का दासानुदास हूँ।

हम उन्हें अपना विद्यागुरु मानते हैं। जैसे हम भी अपने बच्चों को, विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं ना, तो वे भी हमें अपना गुरु मानते हैं तो हम देव-शास्त्र-गुरु वाले गुरु थोड़े ही हो गये। हम तो आप जैसे ही गृहस्थ हैं।

यह बात जब हम कह रहे थे, तब हमारे ब्रह्मचारीजी प्रद्युम्नकुमारजी ईसरी भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने कहा कि फिर वहां से प्रकाशित साहित्य को आप प्रकाशित क्यों करते हैं? इस बात को भी आप स्पष्ट कर दीजिए।

देखो भाई, यह समयसार है और इसकी संस्कृत में आत्मख्याति टीका 1000 वर्ष पहले आचार्य अमृतचंन्द्र ने बनाई। जयपुर के पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा ने हिन्दी टीका बनाई। यह हिन्दी टीका आज से पिच्यासी (85) वर्ष पहले कारंजा के भट्टारकजी ने छापी। उसी टीका को सोनगढ़वालों ने छापा। अब उन्होंने छापना बंद कर दिया; क्योंकि हिन्दी प्रान्त से उनका सम्बन्ध कट गया है। हिन्दी प्रान्त में अब उनका कोई नहीं है, न ही उनका साहित्य बिकता है, न कोई

लेता है। अत: आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ जब मिलना बन्द हो गये तो यह टीका हमनें छापी तो वह सोनगढ़ की कैसे हो गयी? क्या छापने मात्र से उनकी हो गयी? क्या एक बार किसी किताब को कोई छाप दे तो क्या वह किताब उसकी हो जाती है?

यह तो जयपुर के पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा की टीका है और उसे ही हम छापते हैं। ऐसा थोड़ा है कि यदि आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ वे छाप दें तो हम नही छापेंगे; इसलिए वे ग्रन्थ उनके नहीं हैं, हम सबके हैं। जो आध्यात्मिक साहित्य है, पूर्वाचार्यों का है, पण्डितों का है; वह हम छापते हैं अथवा उन पर जो गुरुदेवश्री न्रे प्रवचन किये हैं, उन्होंने जो अध्यात्म का मर्म खोला है, उन प्रवचनों को भी हम सम्पादन करके छापते हैं। बिलकुल आगम से मिली हुई जो पद्धति होती है, उसे छापते हैं।

दूसरा प्रश्न : मुनि मान्यता के बारें में है। आपके पक्षवालों पर मूलाम्नायवालों का आरोप है कि सोनगढ़ वाले अपने प्रवचन में मुनियों को याद तो करते हैं, लेकिन व्यवहार में उनका रवैय्या (आचरण) इसके विरुद्ध है। जबकि दिगम्बर मुनि धर्म ही दिगम्बर आम्नाय का मूल

आधार है। कथनी और करनी में यह फरक क्यों? पंचपरमेष्ठी में एक परमेष्ठी साधु-मुनि हैं।

भाई! आप मुनिराजों के गीत तो बहुत गाते हैं प्रवचन में भी बोलते हैं, आपने 'देव-शास्त्र-गुरु' की पूजा भी लिखी है और उसमें यह भी लिखा है —

चलते-फिरते सिद्धों से गुरु, चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमो पर, नित यहीं भावना भाते हैं।

इसमें तो कोई एतराज नहीं है, लेकिन जो विद्यमान मुनिराज हैं, उन लोगों के प्रति आपका व्यवहार कैसा है?

भाई! इसके लिए तो अभी आपने यह फिल्म देखी। इससे बढ़िया जवाब हम आपको क्या दे सकते हैं? यह फिल्म दो-चार साल पुरानी नहीं है। यह इसी ११ दिसम्बर, १९८७ की है। ११ दिसम्बर को श्री टोडरमल स्मारक भवन में आचार्य विद्यानन्दजी महाराज पधारे थे। हमने उनका वहाँ पर स्वागत किया। उन्होंने एक घण्टा प्रवचन दिया। उन्होंने यह कहा कि **ये सब शास्त्र हमने देखे हैं - ये बिलकुल ठीक है और इनका किसी भी तरह अविनय करना अच्छी बात नहीं है।**

पण्डित रतनचंदजी की लिखी 'जिनपूजन रहस्य' किताब की उन्होंने बहुत प्रशंसा की और एक उदाहरण दिया कि बाजार में हम जाते हैं तो जो चीज हमें किसी की भी दुकान पर मिलती है, यदि अच्छी चीज होती है तो हम उसे खरीदते हैं। वहाँ पर यह विचार नहीं करते हैं कि बेचनेवाला दाढ़ीवाला है कि मूँछवाला है। ऐसे ही **जिनवाणी कहीं से भी प्रकाशित हुई हो, उसका स्वाध्याय हमें अवश्य करना चाहिए।**

श्री शांतिसागर महाराज की यह पत्रिका यहाँ लगी है। देखो! इसमें उनका फोटो है और इस पंचकल्याणक में हम भी जा रहे हैं। इन शान्तिसागर महाराजजी के साथ हमने कम से कम दस पंचकल्याणक किये हैं।

भाई! हम तो अलग रास्ते को अंगीकार करना नहीं चाहते। हम किसी का विरोध नहीं करना चाहते। हम तो इस समाज में शांति से रहना चाहते हैं और इसी समाज में कुन्दकुन्दादि आचार्यों का वीतरागी तत्त्वज्ञान जीवन भर पढ़ना और पढ़ाना चाहते हैं।

आगे पत्र में लिखा है कि दिगम्बर जैन समाज के लिए परस्पर संगठन व सहयोग की दृष्टि से वर्तमान समय बहुत

महत्त्वपूर्ण हैं। अशांत वातावरण को शांत करने में आपकी विशेष भूमिका है। आप सरीखे विद्वानों को अखिल भारतीय दिगम्बर जैन समाज के सभी अंगों को संगठित कर उनका सहयोग लेकर उनमें विश्वास जगाकर यह महान कार्य करना चाहिए।

एक बात इसमें लिखी है, जिससे मैं सहमत नहीं हूँ। वह यह कि कुछ लोग समाज के कण्टक हैं और उन लोगों ने ऐसा वातावरण बना दिया है। इन कण्टकों को दूर किये बिना यह वातावरण सुधरेगा नहीं।

देखो भाई! गुलाब का पेड़ होता है तो उसमें फूल भी लगते हैं और काँटे भी लगते हैं। काँटे को छोड़कर गुलाब के पेड़ की कल्पना करे - यह संभव नहीं है। इसलिए उन्हें हटाये बिना, उन्हें नष्ट किये बिना - इस भाषा में न हम सोचते हैं और न हम सोच सकते हैं। हम तो समझते हैं भाई! समाज में कोई कण्टक-फन्टक नहीं है।

बात सिर्फ इतनी है कि उनको हमारी बात समझ में नहीं आ रही है और उन्हें ऐसा लग रहा है कि हम समाज को/धर्म को बर्बाद कर रहे हैं। यदि सचमुच उनको ऐसा नहीं लगता तो इतना बड़ा काम वे नहीं करते। क्या वे नहीं जानते

हैं कि सुभौम चक्रवर्ती ने णमोकार मंत्र को पानी में हाथ से लिखकर पैर से मिटा दिया था। इसके परिणामस्वरूप वे सातवें नरक में गये थे। यह जिनवाणी जो अभी यहाँ रखी हैं वह साक्षात् सर्वज्ञ भगवान की वाणी है, कुन्दकुन्द की वाणी है; आप देखना, इसमें विद्यानन्दजी महाराज की भी पुस्तकें हैं। उत्तर भारत में एक जयसागरजी महाराज हैं, दक्षिण (कुंभोज बाहुबली) में एक समन्तभद्रजी महाराज हैं। हम उनके पास जाते ही हैं। विद्यासागरजी महाराज हमारे साथ में केसली पंचकल्याणक में थे ही।

अब जो हमको गैर-दिगम्बर घोषित करें। जगह-जगह हमें निकालने की बात करें। हम उनके पास क्यों जायें, कैसे जायें; उनसे हमारा मेल कैसे बैठे? हम तो बहुत प्रयत्न करते हैं, लेकिन वह मेल बैठता ही नहीं। हम तो परसों से यहाँ आये हैं और इसी प्रयत्न में थे; लेकिन जैसा उत्तेजना का वातावरण अभी यहाँ है – ऐसे में हमारी हिम्मत तो नहीं पड़ी कि हम उस आग में कूद जायें। हमने कहा भी कि भाई! थोड़ा यह वातावरण शांत हो तो हम चलें, ऐसे अशान्त वातावरण में बात करने से कोई लाभ नहीं होता। इसलिए किसी के प्रति विरोध की बात तो है ही नहीं।

एक बात हम बता दें कि यह हमारी प्रतिज्ञा है और हमारे सारे प्रवक्ताओं को निर्देश भी है कि कोई किसी की निन्दा न करे। हमारी तरफ से किसी की निन्दा तो हम करते ही नहीं हैं। कोई बताए कि किस मुनि की हमने निन्दा की? हमारे प्रवचनों के कैसेट बनते हैं। पूरे साल भर हम आठ महीने घूमते हैं। सब जगह कैसेट बनते हैं। हमारा साहित्य भी उपलब्ध है। हम किसी की व्यक्तिगत निन्दा करते हों तो कोई निकालकर बताये।

भाई! हमें भी किसी के प्रति श्रद्धा है। जैसी किसी के प्रति श्रद्धा आपकी है तो किसी के प्रति हमारी भी है। हमारी श्रद्धा श्री कानजी स्वामी के प्रति है। उनके प्रति कोई अपशब्द बोले तो हमें कैसा लगेगा? क्या हम पत्थर के बने हुए हैं? अरे भाई! हम आपके ही तो भाई-बन्धु हैं।

जिस जिनवाणी के प्रति हमारी आस्था है, उसकी यह दुर्दशा आपने की है। क्या यह शोभा की बात है? यदि इतनी ही दिलेरी आप में है तो कुरान को ऐसा करके बतायें, रामायण को ऐसा करके बतायें, तो आपको सब मालूम पड़ जायेगा। इनमें विद्यासागरजी की फोटो है, किताबें हैं। जिनवाणी के प्रति उपेक्षा का परिणाम का फल क्या हो

सकता है? लेकिन वे बेचारे क्या करें? उनके दिमाग में कहीं से यह भ्रम खड़ा हो गया है कि इसमें जहर मिला दिया है हमने।

अरे! वे तो बेचारे अपनी समझ में जैनधर्म की रक्षा कर रहे हैं। वे यह नहीं समझते हैं कि इस रक्षा के चक्कर में कहीं अनर्थ तो नहीं हो रहा है? वे तो समझाने के पात्र हैं। वे कण्टक हैं; अतः उन्हें मसल देना, हटा देना – ऐसी भाषा यह जैनियों को शोभा नहीं देती है।

किसी क्षत्रिय से पूछो 'व' का 'ब' बनाना हो तो क्या करना पड़ता है, तो वह कहता है कि पेट चीर दो। बनिये से पूछो तो कहता है कि पेट भर दो। चीरने की भाषा – ये जैनियों की भाषा नहीं है। उसको तो हर समस्या का समाधान भरने से सूझता है। ये दिगम्बरों की भाषा नहीं है, ये महावीर की भाषा नहीं है, ये कुन्दकुन्द की भाषा नहीं है।

एक भी भाई हमसे जुदा हो – यह सोचने के आदी हम नहीं हैं।

भाई! एक दिन हम भी तो स्वामीजी के विरोधी थे। हमारी समझ में विषय आ गया तो हम अनुकूल हो गये। आप में से जो आज स्वामीजी के बड़े पक्षधर हैं, आज

जिनकी आँखों में आँसू हैं; वे छाती पर हाथ रखकर बतायें कि जब तुम्हें यह बात पसन्द नहीं थी तो तुमने कितना विरोध किया था। जब समझ में आया तो पक्ष में हो गये। भाई! किसी को आज समझ में आया है, किसी को कल आयेगा, किसी को परसों समझ में आयेगा। इसलिए किसी कण्टक को समाप्त करने की बात हम तो सोच भी नहीं सकते हैं।

हम तो बहुत से बहुत आगे बढ़ेंगे तो यह सोच सकते हैं कि यदि समाज में शांति से रहकर हम अपनी धर्म साधना, साहित्य की आराधना और स्वाध्याय नहीं कर सकते तो अलग बैठ कर स्वाध्याय करें। बस इससे ज्यादा हम सोच भी नहीं सकते। यह भी हमारे लिए कोई बहुत बढ़िया बात नहीं है कि अभी हाल दस लाख रुपया इकट्ठे करके एक नये मंदिर की नींव यहाँ डाली जाये और इतिहास में लिखा जाय कि यहाँ पर डॉ. भारिल्ल आये थे, तब यह मंदिर बना था। हम यह नहीं चाहते हैं।

उन्होंने कहा कि आप हनुमान बन जायें। भैय्या! हममें वह ताकत कहाँ है, हममें वह शक्ति कहाँ है? उन्होंने तो लंका में आग लगाई थी, वह ताकत हममें कहाँ है? उनमें

वह ताकत थी और उनके सामने संहार करने के लिए राक्षस थे। हमारे सामने राक्षस कहाँ है? ये तो हमारे साधर्मी भाई हैं। यहाँ आग लगाकर तो अपने ही घर को जलाने की बात है।

एक बूढ़ी माँ थी और उसके दो बेटे थे। पिताजी का स्वर्गवास हो गया था। इसलिए उन्होंने निर्णय लिया कि माताजी की सेवा दोनों ही मिलकर करेंगे। दोनों ने माँ को आधा-आधा बाँट लिया। पिताजी होते तो एक भाई पिताजी को ले लेता और एक माताजी को। अकेली माताजी थी, तो एक इस पैर को दबाता, नहलाता, धुलाता और दूसरा दूसरे पैर को दबाता, नहलाता धुलाता — ऐसे दोनों सेवा करते थे।

एक दिन बड़ा भाई आया, उसने अपना पैर धोया और वह गीला था तो सोचा की इसे जमीन पर रखूँगा तो मिट्टी लग जायेगी। उसने उसे दूसरे पैर पर रख दिया। सोचा थोड़ी देर में सूख जायेगा तो नीचे रख दूँगा। दूसरा भाई आया और कहने लगा कि मेरा पैर गंदा है — इसका मतलब यह थोड़े ही है कि तू अपना पैर मेरे पैर पर रखे। वह अन्दर से मूसल ले आया और उसका पैर तोड़ दिया, टाँग तोड़ दी। दूसरे

को भी गुस्सा आया। उसने दूसरी टाँग तोड़ दी। अम्मा की दोनों टाँगें टूट गयीं।

ऐसे ही जिनवाणी हमारी माता है। जिनवाणी माता को हम बाँट लें। कुछ आप हटायें, कुछ आप जलायें। यह कहकर कि इनके यहाँ से प्रकाशित है। इसलिए कुछ हम हटायें; क्योंकि कुछ जगह हमारा भी तो कब्जा है। कुछ मंदिरों में हमारा भी तो बहुमत है।

आखिर हम कोई ऐसे ही तो हैं नहीं। हम तुम्हारी निकालने लग जायें तो इससे जिनवाणी माता की दोनों टाँगें टूटने के अलावा और क्या होगा?

मेरा तो कहना है कि गोली का जवाब गोली से देने की बात तो बहुत दूर, हमें तो गोली का जवाब गाली से भी नहीं देना है। ऐसा पाप हमसे तो होगा नहीं।

(सभा में से एक आदमी चिल्लाया, हाथ में कंगन पहन लो)

अरे पहन लेंगे, क्या दिक्कत है।

भाई! तुम्हारे दुःख को हम जानते हैं। तुम क्या समझते हो कि हमें खुशी हो रही है? अरे अभी तो दिक्कत यह है कि हमें अभी तो हमारे युवकों को ही शान्त करना पड़ेगा।

आधी शक्ति इन युवकों को शान्त करने में लगेगी; क्योंकि जिस कुएँ का पानी आप पीते हो, उसी कुएँ का पानी हमारे ये बेटे भी पीते हैं। कुँआ अलग-अलग होता तो बात अलग थी। जिस मिट्टी में आप पले-पुसे हो, उसी मिट्टी में ये पैदा हुये हैं, अब इनका क्या करें! यह तो अध्यात्म का प्रताप है कि हमारी इतनी बात सुन करके रह जाते हैं।

देखो! यह हमारा विद्यार्थी है और हमको बोलता है कंगन पहन लो! चूड़ियाँ पहन लो!! क्या करें? हम सब जानते हैं कि इनके दिल में कितना दर्द है, वह दर्द बोल रहा है।

यह तो सुबह-शाम उठकर दिन में दो बार पैर पड़ने वालों में से है। कोई अविनयी लड़का नहीं है। यह तो बाल ब्रह्मचारी है। इसने तो अपना सारा जीवन इस काम के लिए समर्पित किया है। घंटे भर से बहुत उबल रहा है। मैंने अपने चार हनुमानों को भेजा है, इसे शान्त करने के लिए; लेकिन अभी तक शान्त नहीं हुआ है।

नहीं, भाई! यह रास्ता नहीं है। मैं आपसे कहता हूँ कि हम भी उसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्य कर रहे हैं। निश्चित रूप से यहाँ का जागरुक समाज इस बात पर

गम्भीरता से विचार करेगा। आप चिन्ता मत करो। हम नागपुर से तभी जायेंगे, जब इस जिनवाणी माता की सुन्दरतम व्यवस्था हो जायेगी। ज्यादा दुःखी होने की रंचमात्र आवश्यकता नहीं है। आपसे मेरा यह विनम्र अनुरोध है कि आप शान्ति बनाए रखें।

हम अन्तिम बिन्दु तक एकता के लिए प्रयत्न करेंगे। यदि हम अपने काम में सफल हो गये तो आपकी समाज की एकता को देखकर बहुत गौरव के साथ यहाँ से जायेंगे। इसी भावना के साथ मैं अभी की बात समाप्त करता हूँ और आगे का कार्यक्रम चलाने का आप सबसे अनुरोध करता हूँ।

दूसरा दिन

कल हमारे चित्त में जो बहुत खेद था और मैंने आपसे अपील की थी कि थोड़ा-सा समय हम शान्ति से बितायें, व्रत-उपवास करें और चित्त में उद्वेग न आने दें। फिर हम सोचेंगे कि हमें इसके बारे में क्या करना है?

इन २४ घंटों में हमने बहुत विचार-विमर्श किया। बहुत से लोगों से सलाह-मशविरा भी किया और हमारा तो यह विश्वास है कि जिस मन्दिर से यह जिनवाणी यहाँ आई है; उसी मंदिर से ही तो अपने पास जिनेन्द्र भगवान भी आये

हैं। जिसप्रकार ये भगवान जावेंगे। उसीप्रकार एक न एक दिन, यह जिनवाणी भी उस मंदिर में अवश्य वापिस जायेगी, ऐसा हमारा विश्वास है। हम कोई जबरदस्ती या किसी और तरीके से इस काम को नहीं करना चाहते हैं। **हम तो हमारे जो भाई हैं, उनका हृदय परिवर्तन चाहते हैं। वे हमें प्रेम से बुलायें और हम प्रेम से जायें, यही हमारा रास्ता है। उसमें भले ही थोड़ी देर लग सकती है, लेकिन अंधेर नहीं हो सकता।**

हृदयपरिवर्तन का जो काम है, वह समय-सापेक्ष होता है। हमें अपने हृदय की पवित्रता का परिचय देना पड़ता है; तब हम सामने वाले से हृदय परिवर्तन की अपेक्षा रख सकते हैं। इसलिए कुछ समय के लिए हम इस जिनवाणी को कहीं एक जगह विराजमान करेंगे। हमारे हृदय में जो पीड़ा है और जो क्षोंभ है, उससे ऐसा लगता है कि हमारे सामने यह काम हुआ और हम अपनी कोई भी श्रद्धा इसके लिए समर्पित न कर पाये। ऐसा लगता है कि हमने जिनवाणी का अपमान सह करके कोई अर्घ्य नहीं चढ़ाया है। इसलिए हम यहाँ पर परसों बहुत अच्छी तरह से जिनवाणी का पूजा-पाठ करेंगे और इसे जुलूस के साथ ससम्मान जहाँ हमें रखना है, वहाँ ले जायेंगे।

हमने यह विचार किया है कि कौन ले जायेगा? कैसे ले जायेगा? सबके हृदय में यह बात है कि इन दो हजार आदमियों में से कौन इस जिनवाणी को ले जाये। सभी तैयार हैं तो क्या सबको एक-एक किताब दें?

इसलिए हमने निर्णय किया कि सुन्दर केशरिया झण्डे वाला कपड़ा मंगाया जायेगा। जिनवाणी को सम्मान के साथ वेस्टनों में बाँधकर करीब २५ बंडल बनाये जायेंगे। बग्गियाँ लायेंगे। उन बंडलों को लेकर बग्गी में बैठकर जुलूस के साथ जायेंगे। उनकी यहाँ बोली होगी। उन पच्चीस बण्डलों को लेकर सब लोग जायेंगे। उन बोलियों में जो भी राशि आयेगी, वह उसी जिनवाणी की रक्षा और जिनवाणी के सम्मान में, प्रचार-प्रसार में ही काम आयेगी।

हम अभी कोई नया स्वाध्याय मन्दिर नहीं बनायेंगे। जबतक हमको यह पूरी आशा है कि हम उसी मन्दिर में स्वाध्याय करेंगे, बैठेंगे और वहीं जिनवाणी विराजमान करेंगे। जबतक यह नहीं हो जाता, तबतक कहीं हमको २-४ महीनें बैठना पड़ सकता है और उसके लिए हमें खर्चे की व्यवस्था करनी पड़ सकती है। वह सारा पैसा आपका उसी व्यवस्था के काम आयेगा।

हम पृथकता के दृष्टिकोण को लेकर नहीं चलना चाहते हैं। हम बरसों इंतजार करेंगे और जब बिलकुल थक जायेंगे; तब कोई दूसरी बात सोचेंगे।

बोलियाँ तो पच्चीस ही होंगी, शेष के लिए गुल्लक रखा जायेगा। इस काम के लिए जो भी अपनी श्रद्धा समर्पित करना चाहे, वह उस गुल्लक में पैसे डालकर अपनी भावना पूर्ण करे। इसकी व्यवस्था के लिए यहीं के जो आदमी हैं, उनकी कमेटी बना दी जायेगी। वे इस काम को देखेंगे। जो बाहर वाले आये हैं, उनकी भी ड्यूटी है कि वह इस काम के लिए अधिक से अधिक दान राशि देकर जायें।

यहाँ वाले तो देंगे ही, यहाँ वालों को तो करना ही है। उस जिनवाणी की सवारी बहुत शान के साथ ले जायेंगे। जहाँ भी वह रहे, शान के साथ विराजमान रहे। स्वाध्याय चालू रहे। जब भी वापस उस मन्दिर में हमारी जिनवाणी पहुँचेंगी तो जो पैसा बचेगा हम उस मन्दिर में दे देंगे। जिस मन्दिर में यह विराजमान होगी, वहीं वह पैसा दिया जायेगा। ऐसी कोई बात नहीं है कि हमको अलग करना है। लेकिन जबतक हमको अलग रहना पड़ेगा, तबतक उस व्यवस्था में जितना भी खर्च होगा, इसी में से होगा।

यदि आपको स्वाध्याय आदि की कोई तकलीफ आये तो आप जितने भी रुपये महीने के हिसाब से जो भी जगह मिले, वह किराये से ले लीजिए, मैं तो आपको अपनी तरफ से, संस्थाओं की तरफ से, ये आश्वासन देता हूँ कि उसका ५०% किराया आपको हम देंगे। यदि आप २०००/- रुपये महीने की जगह लेंगे तो १०००/- रुपये हम देंगे। उसके बाद भी अपनी जगह बनाने की आवश्यकता पड़ी तो उसके लिए भी हमसे जो बनेगा, आपका हाथ हम अवश्य बटायेंगे। मैं चाहता हूँ कि यहाँ कभी आवश्यकता पड़े ही नहीं। कल सब लोग सोचकर आयें, मैंने २४ घण्टे पहले आपको सूचना देनी जरूरी समझी।

भाई! उपवास को व्यक्तिगत ही रहने दो, सामूहिक रूप न दें। हमको कोई आन्दोलन खड़ा नहीं करना है। **हमको तो प्रायश्चित्त करना है। अपने दुःख का शमन करना है। हमारे सब लोगों ने आज जिससे जैसा बना है, वैसा किया ही है। कषाय की बात भी बिलकुल भी अपने चित में न लायें।** जैसा उत्साह का वातारण अभी आपने अन्य बोलियों में बताया है, वैसा कल आपको जिनवाणी के प्रति बताना है। वास्तव में आपकी जो भक्ति कुन्दकुन्द

के प्रति है, उन्हीं कुन्दकुन्द की यह वाणी है, इसमें आपका उत्साह देखने को मिलेगा; - ऐसा मेरा पूरा विश्वास है। एक दिन फिर हम जल्दी से जल्दी नागपुर में आयेंगे और अखण्ड समाज के एक सामूहिक आमंत्रण पर आयेंगे। ऐसी मेरी भावना है।

❊ ❊ ❊

डॉ. भारिल्ल के इस व्याख्यान का जादू जैसा असर हुआ और वातावरण एकदम शान्त हो गया। जब बोलियाँ लगीं तो सबसे पहली बोली - डॉ. भारिल्ल ने ही ली थी। फिर तो बोलियों का ताँता लग गया। २५ के स्थान पर ५० बोलियाँ लगानी पड़ीं।

कालान्तर में मन्दिर भी बनाना पड़ा और हमारे सद्भाग्य से वह मन्दिर भी दर्शनीय बन पडा है। •

वाणी का संयम बहुत जरूरी

(दिनांक 16 से 21 नवम्बर, 2005 तक किशनगढ़ (राज.) में हुये पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में केवलज्ञान कल्याणक के अवसर पर सामाजिक सद्भावना एवं शांति के लिये डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा दिये गये मार्मिक उद्बोधन का महत्त्वपूर्ण मार्मिक अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सम्पादक)

पंचकल्याणक महोत्सव समापन की ओर है। इस अवसर पर मैं दो-तीन मार्मिक बातें आपसे कहना चाहता हूँ, इसके पश्चात् केवलज्ञान कल्याणक की चर्चा करूँगा।

पहली बात तो यह है कि हम अपनी पीठ को कितनी ही क्यों न ठोकें, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि पूज्य गुरुदेवश्री का पुण्य प्रताप अभी जीवित है; इसीलिये हमें यह सफलता मिली है।

हम तो उन आचार्यों के शिष्य हैं जो समयसार जैसा ग्रन्थ और आत्मख्याति जैसी टीका लिखकर भी अन्त में

लिखते हैं कि मैंने कुछ नहीं किया। अक्षर मिलकर शब्द बन गये, शब्द मिलकर वाक्य बन गये और वाक्य मिलकर यह पवित्र शास्त्र बन गया। अमृतचन्द्र ने कुछ किया है – ऐसा मानकर हे शिष्य ! तुम मोह में मत नाचो !

हमें बहुत प्रसन्नता है कि आज भगवान नेमिनाथ को केवलज्ञान प्रकट हो गया है। हमारा यह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव बहुत शंकाओं और आशंकाओं के बीच अधिकतम सफलताओं के साथ सम्पन्न होने जा रहा है।

इस प्रसंग पर मैं एक बात कहना चाहता हूँ कि जब किसी पेड़ पर फल लगते हैं अर्थात् वह पेड़ सफल होता है तो नम जाता है, नीचे झुक जाता है। यदि ये हमारा पंचकल्याणक महोत्सव सफल हुआ है तो हमारे लोगों को भी अपने को विनम्र बनाना चाहिये। उसमें यह नहीं समझना चाहिये कि हम विनम्र बने तो हमारी गर्दन नीची हो गई।

अभी पाँच मिनिट पहले एक बच्ची ने एक गीत (छन्द-मुक्तक) सुनाया। कोई ज्यादा अच्छी बात तो नहीं कही, पर आप सबने भी तालियाँ पीट दी, मुझे बहुत दुख हुआ।

ऐसे मंगल अवसर पर सहयोग करनेवालों को याद किया जाता है या असहयोग करनेवालों को ?

मेरे कहने का आशय यह है कि हमारे जीवन में

विनम्रता आनी चाहिये; क्योंकि हम सफल हुये हैं।

हम भगवान के मंदिर में भगवान की प्रतिमा विराजमान कर रहे हैं, हमारे हृदय मंदिर में भी भगवान विराजमान हुये हैं, भगवान आत्मा विराजमान हुआ है।

जहाँ हृदय में भगवान विराजमान हुये हों, वह हृदय कैसा होना चाहिये ? मैं आपसे इसकी कल्पना करने की अपेक्षा रखता हूँ।

सामाजिक दृष्टि से समाज सर्वोच्च है; उससे कटकर रहने की हम कल्पना भी नहीं कर सकते, करना भी नहीं चाहिये। हमें हर बात को नेगेटिवरूप में नहीं देखना चाहिये।

जैसा कि कल समाज में दिगम्बर तेरापंथी-बीसपंथी का जो सामूहिक भोज हुआ, उसमें उन लोगों को भी आमंत्रण दिया गया, जिनको पहले जात-बाहर करने की धमकियाँ दी गई थी। इसलिये समझना चाहिये कि हमारे इस पवित्र यज्ञ से उनके हृदय में भी कुछ अच्छे भाव जगे हैं, उसका यह परिणाम है।

हमें इस बात को राजनीति नहीं समझकर पवित्र हृदय से स्वीकार करना चाहिये। हमारे बारे में समाज को जो भी शिकायतें हैं, जिनके कारण ये थोडी-बहुत तकलीफें खड़ी होती हैं – ऐसी बातों से हमे बचना चाहिये; किन्तु जो

तत्त्वज्ञान की मान्यता है, उसे तो हम किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ सकते हैं। चाहे हमें सब कुछ छोड़ना पड़े।

लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि हम अपनी बात को विनम्रता पूर्वक भी बड़ी दृढता के साथ रख सकते हैं, उसके लिये कठोर शब्दों की कोई आवश्यकता नहीं है। इससे जो अनावश्यक तकलीफें खड़ी होती हैं; वे खड़ी नहीं होगी। पर जो होनी है, वो तो होकर ही रहेगी।

हम अलग रहकर भी समाज के अंग हैं और समाज में रहकर भी अलग हैं। अलग इसलिये हैं कि हम निर्विघ्न अपना पूजा-पाठ स्वाध्याय करना चाहते हैं; क्योंकि हमें दूसरी जगह ये कार्य निर्विघ्न करने का अवसर प्राप्त नहीं होता।

हम एक साथ इसलिये हैं कि हमारा सम्मेदशिखर एक साथ है, हमारा गिरनार एक साथ है, हमारे भगवान महावीर एकसाथ हैं – उनको तो हम नहीं बांट सकेंगे।

यह हमारी मजबूरी समझों या जो कुछ भी है, हम न अलग रह सकते हैं न एक साथ रह सकते हैं।

हमको एक साथ रहकर भी अलग रहना सीखना होगा और अलग रहकर भी एकसाथ रहना सीखना होगा।

प्रदीपजी चौधरी ने इतना बढिया काम किया है, उन्हें आप लोगों ने भरपूर शाबाशी भी दी है और वह काम शाबाशी

के काबिल है भी; लेकिन फिर भी प्रदीपजी से और बेटी कुसुम से मैं यह कहना चाहता हूँ कि अब अपने मुंह से एक भी ऐसा शब्द नहीं निकालना, जो हमारी इस प्रतिष्ठा की गरिमा को कम करे।

पूरा दिगम्बर जैन समाज अपना है और अपना रहेगा। अब आपको क्या तकलीफ है; आपका मंदिर है, पूजा करिये, पाठ करिये, स्वाध्याय करिये, चर्चा करिये; पर इसमें कठोर शब्दों की क्या जरूरत है ?

मेरे हृदय में यह विकल्प इसलिये उठा है; क्योंकि मैं बहुत दिनों से ऐसी बातें सुनता आ रहा हूँ कि यदि ऐसा नहीं होता तो ऐसा हो जाता। आपके कानों में भी ऐसी बातें आई होगी। अब जो हो गया, उसकी मैं बात नहीं करता; लेकिन कल से ऐसा नहीं होना चाहिये।

सामनेवाले भले ही भाषा समिति छोड दें; किन्तु हमें भाषा समिति नहीं छोडना चाहिये।

मैं सच्चे दिल से आपसे यह आग्रह करना चाहता हूँ कि आपकी-हमारी वाणी बहुत मीठी होनी चाहिये, बहुत प्यारी होनी चाहिये। विनम्रभाषा में भी दृढता पूर्वक इंकार किया जा सकता है, अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहा जा सकता है।

हमारे अस्तित्व के लिये हमें पंचपरमेष्ठी की शरण के अतिरिक्त किसी की भी शरण की आवश्यकता नहीं है।

ऐसा होने पर भी हमें सबसे हिल-मिलकर रहना चाहिये। जब हम अजैनियों से मिलकर रह सकते हैं; मुसलमान, ईसाई, हिन्दू भाईयों से मिलकर रह सकते हैं तो क्या अपने जैन भाईयों से मिलकर नहीं रह सकते ? सामनेवालों की तरफ से कुछ भी हो, हम ठण्डे रहेंगे तो सब मामला बहुत जल्दी ठण्डा हो जायेगा।

पुखराज पहाड़िया ने कहा कि सब २१ नवम्बर तक का झगड़ा है, २१ तारीख के बाद सब ठण्डा हो जायेगा।

मेरे से उनकी पकड़ ज्यादा गहरी लगती है। मैं तो समझता था कि माहौल को ठण्डा होने में महिने-दो- महिने लग जायेंगे; जबकि उन्हें तो २१ तारिख के बाद ही मामला ठण्डा होने का भरोसा था।

लेकिन हम दोनों ही फेल हो गये और २१ तारिख से पहले ही मामला ठण्डा हो गया। इसलिये अब हमें पुरानी सब बातें भूलकर विनम्रता एवं समताभाव का रास्ता अपनाते हुये अपने जीवन का कल्याण करना चाहिये।

बस इतनी ही बात मैं आप सबसे कहना चाहता हूँ। ●

डॉ. भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. समयसार : ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका	५०.००
२. समयसार अनुशीलन भाग-१	२५.००
३. समयसार अनुशीलन भाग-२	२०.००
४. समयसार अनुशीलन भाग-३	२०.००
५. समयसार अनुशीलन भाग-४	२०.००
६. समयसार अनुशीलन भाग-५	२५.००
७. समयसार का सार	३०.००
८. गाथा समयसार	१०.००
९. प्रवचनसार : ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी टीका	५०.००
१०. प्रवचनसार अनुशीलन भाग-१	३५.००
११. प्रवचनसार अनुशीलन भाग-२	३५.००
१२. प्रवचनसार अनुशीलन भाग-३	२५.००
१३. प्रवचनसार का सार	३०.००
१४. छहढाला का सार	१५.००
१५. ४७ शक्तियाँ और ४७ नय	८.००
१६. पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००
१७. परमभावप्रकाशक नयचक्र	२०.००
१८. मोक्षमार्गप्रकाशक का सार	१५.००
१९. चिन्तन की गहराइयाँ	२०.००
२०. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	१५.००
२१. धर्म के दशलक्षण	१६.००
२२. क्रमबद्धपर्याय	१५.००
२३. बिखरे मोती	१६.००
२४. सत्य की खोज	२०.००
२५. अध्यात्मनवनीत	१५.००
२६. आप कुछ भी कहो	१२.००
२७. आत्मा ही है शरण	१५.००
२८. सुक्ति-सुधा	१८.००
२९. बारह भावना : एक अनुशीलन	१५.००
३०. दृष्टि का विषय	१०.००
३१. गागर में सागर	७.००
३२. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	१०.००
३३. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन	१०.००
३४. रक्षाबन्धन और दीपावली	५.००
३५. आचार्य कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम	५.००
३६. युगपुरुष कानजीस्वामी	५.००

३७. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	१५.८०
३८. मैं कौन हूँ	५.००
३९. निमित्तोपादान	३.५०
४०. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	३.००
४१. मैं स्वयं भगवान हूँ	४.००
४२. ध्यान का स्वरूप	४.००
४३. रीति-नीति	३.००
४४. शाकाहार	२.५०
४५. भगवान ऋषभदेव	४.००
४६. तीर्थंकर भगवान महावीर	२.५०
४७. चैतन्य चमत्कार	४.००
४८. गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२.००
४९. गोम्मटेश्वर बाहुबली	२.००
५०. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	२.००
५१. अनेकान्त और स्याद्वाद	२.००
५२. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर	५.००
५३. बिन्दु में सिन्धु	२.५०
५४. पश्चात्ताप खण्डकाव्य	७.००
५५. बारह भावना एवं जिनेंद्र वंदना	२.००
५६. कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद	२.५०
५७. शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद	१.००
५८. समयसार पद्यानुवाद	३.००
५९. योगसार पद्यानुवाद	०.५०
६०. समयसार कलश पद्यानुवाद	३.००
६१. प्रवचनसार पद्यानुवाद	३.००
६२. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद	१.००
६३. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद	३.००
६४. अर्चना जेबी	१.००
६५. कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित)	१.२५
६६. शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित)	१.००
६७. बालबोध पाठमाला भाग-२	३.००
६८. बालबोध पाठमाला भाग-३	३.००
६९. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-१	४.००
७०. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-२	४.००
७१. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-३	४.००
७२. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१	५.००
७३. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-२	६.००

योगी और भोगी

पर तुम जरा सोचो तो, योगियों को भीड़ से क्या प्रयोजन ? योगी तो एकान्तप्रिय होते हैं। भीड़ तो भयाक्रान्त भोगी चाहते हैं, निर्भय योगी नहीं।

भोगियों के अन्दर विषय-कषाय की अनंत ज्वाला रहती है और योगियों के भीतर अनंत अकषाय शांति।

जब एकान्त होता है तो सहज ही अन्तर प्रवेश होता है, वहाँ भोगी अनंत विषय-कषाय की ज्वाला में जलता है; अत: वह एकान्त पसन्द नहीं करता है तथा योगी जब अन्तर प्रविष्ट होता है तो शांति और आनंद का अनुभव करता है; अत: वह एकान्त पसन्द करता है।

भीड़ से घिरा रहना और मेला लगा रहना कोई महान साधुता की निशानी नहीं है। लाईन लगने और मिलने का समय न मिलने का तो सवाल ही नहीं है।

साधु का किसी से एकान्त में मिलने का क्या प्रयोजन ?

वे सबका भला चाहते हैं तो उन्हें सबको ही सुख का मार्ग बताना चाहिये।

उपदेश कोई दवा तो है नहीं, जो व्यक्तिगत दी जाये।

– सत्य की खोज, पृष्ठ-39